सहजानंद शास्त्रमाला

कारण-कार्य-विधान

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

कारण-कार्य-विधान

रचयिता:—
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ गुरुवर्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक:—
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

मंगल-तन्त्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं।
मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं ।
मैं सहज आनंदमय हूं, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूं ।

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

आत्म-रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥टेक॥

हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ।
हूं सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ॥१॥
हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ॥२॥
आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ॥३॥

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥टेक॥ ॐ
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥१॥ ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥२॥ ॐ
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुं गति दुखहारी ॥३॥ ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥४॥ ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥५॥ ॐ

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।।टेक।।

मैं वह हूं, जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुखकी खान ।
निजको निज परको जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज,धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम ।।५।।

कारण-कार्य-विधान

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

(१) **कारणकार्यविधानकी प्रस्तावना**—मिथ्यात्व, रागादि भाव व सम्यग्दर्शन आदि कैसे उत्पन्न होते हैं और उनकी उत्पत्तिमें आधार क्या है, इस विषयको समझनेके लिये थोड़ा सा कारणकार्यविधान समझ लीजिये । जीवके कार्य दो प्रकार के होते हैं—(१) शुद्ध कार्य, (२) अशुद्ध कार्य । शुभ और अशुभ परिणाम ये अशुद्ध कार्य कहलाते हैं । शुभ और अशुभ परिणाम भी दो-दो प्रकारके हैं—(१) बुद्धिपूर्वक, (२) अबुद्धि-पूर्वक । बुद्धिपूर्वक शुभ अशुभ भाव वे हैं जो इस जीवकी बुद्धि में आये हैं, जिनकी मुद्रा व्यक्त बन गई है । अबुद्धिपूर्वक शुभ अशुभ भाव वे हैं जो कर्मके उदय व क्षयोपशमसे अन्दर प्रति-फलित तो हुए हैं, किन्तु उपयोग स्वकी ओर या उचित अन्यत्र पहुंच गया है, अतएव वे प्रतिफलित शुभ अशुभ भाव बुद्धिमें नहीं आते । स्वभावके अनुरूप शुद्ध परिणाम शुद्ध कार्य है ।

शुद्ध कार्यके विषयमें भी दो बातें समझनी हैं—शुद्ध कार्यका उत्पत्तिक्षण और शुद्ध पर्यायका प्रवर्तनाकाल। जैसे सम्यक्त्व जिस समय हुआ उस समयके सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कथन और उत्पन्न हुए बाद जो हमेशा रहे आगे, उस सम्यक्त्वकी वर्तनाविषयक कथन। इसमें कारणकार्यकी बात दो प्रकार चलेगी। केवलज्ञान हुआ, जिस क्षण उत्पन्न हुआ उस क्षणके केवलज्ञान कार्यका निरूपण, उसकी क्या विधियाँ और केवलज्ञान अनन्तकाल तक रहेगा इसके सम्बंधमें वर्णन, ऐसे अनेक स्थल हैं जिनको जुदे-जुदे ढंगोंसे समझना होगा। सर्वप्रथम अशुद्ध कार्यके विषयमें समझें। शुभ अथवा अशुभ कार्य जब ये बुद्धिपूर्वक होते हैं तबका वर्णन और तरहका और यह अबुद्धिपूर्वक होता है तबका वर्णन और तरहका। तब कोई प्रसंग आया बुद्धिपूर्वक अशुद्ध कार्य, अबुद्धिपूर्वक अशुद्ध कार्य, शुद्ध कार्यकी उत्पत्ति क्षण वाला विधान। शुद्ध कार्यकी वर्तना काल वाला विधान, चार रूपोंमें कारण कार्यका विधान सुनना है।

(२) **तीन प्रकारके कारणोंका निर्देश**—सर्वप्रथम लीजिए बुद्धिपूर्वक अशुद्ध कार्य। शुभ अशुभ विकार जहाँ बुद्धिपूर्वक जग रहे हैं, वहाँ क्या व्यवस्था है? कारण तीन प्रकारके समझिये—(१) उपादान कारण, (२) निमित्त कारण और (३) आश्रयभूत कारण। कारण जब तीन प्रकारके कहे हैं तो

उन कारणोंका स्वरूप भी तीन प्रकारका हुआ। इस कथनके प्रसंगमें यदि बात तो कही जा रही है किसी कारणकी और सुना जा रहा है दूसरे कारणका स्वरूप ध्यानमें रखकर तो वहाँ विवाद होता है। जिस कारणकी बात कही जाय उस कारणके स्वरूपसे ही उस कारणको सुना जाय तो वहाँ निर्णय होता है। उपादान कारण उसे कहते हैं जिसमें कार्य होता। जो वस्तु है, जिसकी परिणति कार्य है वह उपादान कारण कहलाता। निमित्त कारण वह दूसरी वस्तु कहलाती। जिसके साथ इस अशुद्ध कार्यका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध हो। अन्वयव्यतिरेकका अर्थ है—इसके होनेपर ही होना, इसके न होनेपर न होना, यह सम्बंध जिसपर एक साथ पाया जाय उसे कहते हैं निमित्त कारण। आश्रयभूत कारण किसे कहते? जिसका कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बंध नहीं है, किन्तु यह उपयोग जिसको विषय किए हुए है, जिसका आलम्बन लिए हुए है उस परपदार्थको कहते हैं आश्रयभूत कारण।

(३) **एक उदाहरणमें तीन कारणोंका स्पष्टीकरण**—एक उदाहरण लो—जैसे किसी पुरुषको अपने पुत्रमें राग हुआ है तो वहाँ जिस जीवमें रागपरिणमन हो रहा है वह तो है उपादान और राग परिणतिका उदय, यह है निमित्त कारण अर्थात् रागप्रकृतिके उदयमें ही राग हो पाता है, रागप्रकृतिका उदय न होनेपर राग नहीं हो पाता, ऐसा अन्वयव्यतिरेक सम्बंध है। है परद्रव्य, यह बात सर्वत्र ध्यानमें रखनी कि

कोई भी परद्रव्य किसी भी परमें अपनी परिणति न देगा, पर भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें वास्तवमें षट्कारकता नहीं है। स्वयंका स्वयंमें ही षट्कारकपना है। यह बात सर्वत्र ध्यानमें रखनी और जब कभी षट्कारककी योजना बतायी जाती है भिन्न पदार्थोंमें तो वह उपचारसे बतायी जाती है। और उस उपचारका प्रयोजन होता है निमित्तका बताना। तो उस पुत्र राग का निमित्त कारण है रागप्रकृतिका उदय, और उस रागका आश्रयभूत कारण है पुत्र। पुत्रका इस रागके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बंध नहीं है कि पुत्रके होनेपर ही राग हो, पुत्रके न होनेपर राग न हो, ऐसा यहाँ सम्बंध नहीं है, किन्तु यह ही जीव जब पुत्रका आलम्बन लेकर याने उपयोगमें उसे समाकर, उसे विषयभूत बनाकर वह राग बना रहा है तो वह आश्रयभूत कारण कहलाया। इसमें आश्रयभूत कारण तो आरोपित कारण है। पुत्रको उपयोगने विषयभूत किया, उसपर दृष्टि की और राग बना तो चरणानुयोगमें जो उपदेश दिया गया है वह आश्रयभूतके त्यागका उपदेश किया गया है। तो ये बुद्धिपूर्वक अध्यवसान बाह्यवस्तुका आश्रय किए बिना अपना स्वरूप नहीं पाते, ऐसा जानकर आश्रयोंका त्याग किया जाता है। चाहे आश्रयभूत कारणका त्याग करनेपर विकार हटे या न हटे, यह बात अलग है, मगर आश्रयभूत कारणका त्याग कर देनेमें एक सुविधा रहती है। और मनसे अगर त्याग न

हो पाया तो फिर बुद्धिपूर्वक तद्विषयक राग बन गया। तो चरणानुयोगकी जितनी क्रिया है, जितनी निवृत्ति वाली बात है उनके प्रयोजनमें आश्रयभूत कारणका परिहार करें। एक गंतव्य स्थानमें सुविधासे पहुंच जाये इसके लिए जीव सब उपाय करे। तो हम लोगोंको ऐसी स्थितियाँ हैं कि सब ओर से अपनी सावधानी बना लें। मूल दशा तो वह है ही। अगर उस मूल दशामें जाना निर्बाध हो रहा तब तो हम नहीं सोचते कि काम नहीं बन रहा, ऐसी स्थितिमें हम सब ओर की सम्हाल बनाया करते हैं।

(४) बुद्धिपूर्वक अशुद्ध कार्य याने शुभ अशुभमें कारणों का वर्णन—बुद्धिपूर्वक अशुद्ध कार्य, शुभ अशुभ कार्य जब होते हैं तो वहाँ तीन कारण हुआ करते हैं और कार्य बनता है। कार्यरूप परिणमा सो उपादान कारण। उपादान कारण का स्वरूप शेष दो कारणोंमें न जायगा। जिस परपदार्थके सन्निधानमें यह हुआ, जिसके असन्निधानमें नहीं हुआ, ऐसा वह कारण निमित्त कारण है, वह बाहर ही रह रहा, यह उपादानमें परिणति नहीं दे रहा, उपादानके स्वरूपसे बाहर है। निमित्त कारणका जो स्वरूप है सो वह भी शेष दो कारणोंमें न जायगा। निमित्तको उपस्थिति बाहरी ही परिस्थिति है, बिल्कुल भिन्न क्षेत्रमें उपस्थित है। बाह्य क्षेत्रकी अपेक्षा और चूंकि उसपर हमारा उपयोग पहुंचा और इतना

गहरा पहुंचा कि इष्ट अनिष्ट कल्पना बनायी, वह असद्भूत कारण है। उसका जो स्वरूप है तो उन दो कारणोंमें न घटेगा। इस तरह बुद्धिपूर्वक जो कार्य हो रहे हैं शुभ अशुभ विकार, उनमें इस तरह व्यवस्था बनी है। अबुद्धिपूर्वक विकारमें दो कारण रहते हैं—(१) उपादान कारण और (२) निमित्त कारण। आश्रयभूत कारण वहाँ यों नहीं है कि उसकी ओर बुद्धि ही नहीं जा रही है उसमें मुद्रा ही उस प्रकारकी नहीं बन रही है।

(५) अचेतनके कार्यमें दो कारणोंका प्रसंग—इस प्रसंग में एक बात और समझें कि जहाँ अचेतन और चेतन पदार्थमें कार्य-कारणका विधान चलता है वहाँ आश्रयभूत कारण नहीं होता, क्योंकि दोनों ही अचेतन हैं, परिणमने वाले अचेतन हैं तो वे किसको आश्रय बनावेंगे, किसको समझेंगे, किसको विषय बनायेंगे, वहाँ तो उपयोग है ही नहीं। यह आश्रयभूत कारण की बात चेतनके लिए चलती है। अचेतनके कार्यमें आश्रयभूत कारणकी बात नहीं है। जैसे सामनेके अनेक दृष्टान्त और एक दृष्टान्त और लीजिए—जीवके शुभ अशुभ, शुद्ध परिणामोंका निमित्त पाकर पौद्गलिक कार्माणवर्गणाओंमें कोई अवस्था बनती है—आस्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा आदिक, संक्रमण, उपकर्षण, अपकर्षण आदि कुछ भी दशायें बनें तो उन दशाओं का उपादान पौद्गलिक कार्माणवर्गणा है, उनका कार्य है, वह

अचेतनका कार्य है। उस कार्यके लिए कभी भी आश्रयभूत कारण न होगा, क्योंकि वे कर्म किसको विषय करेंगे? आश्रभूत कारण बुद्धिपूर्वक शुभ अशुभ विकारमें मिलता है।

(६) शुद्ध कार्यकी उत्पत्तिके क्षणमें हुए कारणका विवरण—हाँ, अब लीजिए शुद्ध कार्यके उत्पत्तिक्षणकी बात। शुद्ध स्वभाव शुद्ध कार्य। जैसे प्रकरणमें सम्यग्दर्शन ही को लो। सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो रहा है उस कालमें दो कारण हैं—(१) उपादान कारण और (२) निमित्त कारण। आश्रयभूत कारण नहीं है। उपादान कारण है यह जीव जो सम्यग्दर्शन पर्यायसे भूषित हो रहा। निमित्त कारण है सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम। आश्रयभूत कारण कौन है? इस सम्बंधमें कुछ लोग कुछ बातें पेश कर सकते हैं। जैसे—समवशरणमें जाना, जिनबिम्बदर्शन करना, उपदेश सुनना और भी कुछ घटनायें होती दिखना, यह आश्रयभूत कारण हो जायगा। निमित्त कारण तो यह किसीके भी नहीं है। न यह शुभ विकारमें भी निमित्त कारण है। तो सम्यग्दर्शनके निमित्त कारण तो बताये, पर जिनबिम्बदर्शनादि सम्यग्दर्शनके आश्रयभूत कारण हैं, यह कहा जाय या नहीं, इसपर विचार करें। निमित्त कारण और नैमित्तिक कार्य—इनका होना एक समयमें है, पूर्वापर नहीं।

जिस कालमें यह जीव दर्शन, स्वाध्याय आदिक किसी बातमें उपयोग दे रहा है याने इसे आश्रयभूत कर रहा है उस समय में शुभोपयोगका निर्माण है, सम्यक्त्वका निर्माण नहीं, पर होता क्या है कि इस शुभोपयोगकी इसमें जितनी विशुद्धि है उसका निमित्त पाकर सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियोंमें उपशम आदिक होता है, और ७ प्रकृतियोंका उपशम आदिक होनेपर सम्यग्दर्शन होता है। तो सम्यग्दर्शनके कालमें केवल स्व अखण्ड विषय है, वहाँ परपदार्थ आश्रयभूत नहीं है। सम्यग्दर्शन स्वके अवलम्बनसे ही हुआ है, इसलिए उस समय उत्पत्तिके समय निमित्त कारण तो है, पर आश्रयभूत कारण नहीं है। यहाँ आश्रयभूत कारणसे परपदार्थ लिया जाता। सम्यक्त्वोत्पत्तिमें स्व ही एक आलम्बन है। तो स्वमें स्वका आश्रय उसे आश्रयभूत कारणमें न गिनो। वह एक स्व है, स्वयं है, अखण्ड है, खुद ही है। आश्रयभूत कारण तो परपदार्थ कहलाता, जिसके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बंध नहीं। तो सम्यग्दर्शनके सयय कोई भी परपदार्थ आश्रयभूत नहीं है। यह उत्पत्ति क्षणका कथन कह रहे हैं, किन्तु ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय आदिक वहाँ निमित्त कारण है।

(७) **जिनबिम्बदर्शनादिको सम्यक्त्वका कारण बतानेका कारण**—सम्यग्दर्शनसे पहले शुभोपयोग ही था, अशुभोपयोग न था। अशुभोपयोगके बाद सम्यक्त्व नहीं होता, शुभोपयोग

के बाद सम्यक्त्व होता है। तो सम्यक्त्वसे पहले जो शुभोपयोग हुआ उस शुभोपयोगमें यह आश्रयभूत कारण था, दर्शन आदिक ऋद्धिदर्शन, वेदनाप्रभव आदिक जो-जो भी कारण बताये गए वे तो चूंकि सम्यक्त्वसे पहले होने वाले शुभोपयोग के वे आश्रयभूत कारण थे। तो शुभोपयोगके बाद हुए सम्यग्दर्शनके लिए, लोगोंको कर्तव्य बतानेके लिए कि क्या-क्या कार्य करना चाहिए, जितनी सम्यग्दर्शनकी बातें बन सकें सो वे निमित्त कारण बतायी गईं हैं और आगममें भी कही गईं। धवलाकी छठी पुस्तकमें चूलिकाके कथनमें सम्यग्दर्शनके निमित्त कारण भिन्न-भिन्न गतियोंके जीवोंके हिसाबसे बताया गया है। कहीं तीन निमित्त कारण, कहीं चार निमित्त कारण। वे निमित्त कारण तो किसीके भी नहीं हैं, शुभोपयोग के भी नहीं हैं। उस आश्रयभूत कारणको निमित्त शब्दसे कह दिया है, सो ऐसा कहनेकी एक प्रथा है। तो अर्थ उसका यह है कि इस तरहसे परम्परया कारण बताया जाता है।

(८) **सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध भावके आगे बर्तते रहनेके प्रसंगमें कारणका विवरण**—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके कालमें उपादान कारण और निमित्त कारण हैं, पर उत्पन्न हुएके बाद जो सम्यग्दर्शनकी बर्तना चल रही है उसमें अब वह निमित्त कारण न रहा। कालद्रव्य सर्वत्र निमित्त है, और साधारण रूपसे निमित्त है, इस कारण उसको निमित्तके प्रसंग

में देखना भी है, क्योंकि कहीं भी उसका व्यतिरेक नहीं पाया
जाता । तो देखो—यहां कालद्रव्य नहीं है तो उसका परिण-
मन तो नहीं होता, ऐसा आप कोई उदाहरण नहीं दे सकते,
इस कारण यह साधारण निमित्त कहलाता है । खोजना तो
वहां है उस निमित्तको कि जो कभी है और कभी नहीं है ।
तो ऐसेको निमित्त कह लीजिए । तो अब सम्यग्दर्शनकी जो
अंग वर्तना चल रही है उसमें अब क्षय उपशम आदिक होना
यह निमित्त कारण नहीं है, फिर भी आखिर बर्तते हुए सम्य-
क्त्वको भी कहते तो हैं ही कि क्षायिक सम्यक्त्व है, सो उसकी
याद दिलाई गई है कि यह सम्यग्दर्शन जिस कालमें उत्पन्न
हुआ था उस कालमें ७ प्रकृतियोंका क्षय हुआ था । जो क्षय
हुआ सो वह अभाव ही अभावरूप है, उसे कहते हैं क्षायिक ।
मगर क्षय हुआ यह निमित्त आगे वर्तनामें नहीं पड़ा हुआ है,
पर औपशमिक सम्यक्त्वमें जब तक उपशम सम्यक्त्व है तब
तक उपशम बराबर चल रहा है । क्षयका तो एक ही समय
होता है, उपशम एक समय नहीं होता । उपशम चल ही
रहा । अब भी चल रहा, अन्तर्मुहूर्त तक चल रहा । और
क्षयोपशम भी जब तक है तब तक चल रहा है निरन्तर उद-
याभावी क्षय, प्रतिसमय निरन्तर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय ।
परन्तु यह क्षायिक सम्यक्त्व ऐसा है कि क्षायिक सम्यक्त्व
उत्पन्न होनेका जो कारण है क्षय, सो उसका काल एक ही

समय है । अभाव तो रहेगा हमेशा, पर उस अभावका नाम
क्षय नहीं है, इसके मिटनेका नाम क्षय है, निवृत्तिका नाम क्षय
है । निवृत्ति एक समयमें है, अभाव सदाकाल है । निवृत्ति हो
चुकी, पर निवृत्ति होना वह है क्षायिक सम्यक्त्वका निमित्त
कारण ।

(६) **आत्मकल्याणके लिये मात्र स्वके आलम्बनकी
शिक्षा**—यहां एक शिक्षामें दृष्टि देनेकी बात यह है कि यह
निरखना कि सम्यग्दर्शन स्वके आश्रयसे प्रकट होता है । औप-
शमिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भले ही उपशम
और क्षयोपशममें चल रहे हैं, पर वहाँ आश्रय किसी परका
नहीं है । जहां-जहाँ परका आश्रय है वह-वह सब शुभोपयो-
गादि होगा, शुद्ध भाव नहीं । जो-जो सम्यग्दर्शन हैं वे स्वके
आश्रयसे उद्भूत विशुद्ध परिणाम हैं । यों सम्यग्दर्शन बाह्य
पदार्थकी ओरसे सदा निरालम्ब है । चाहे उत्पन्न हो रहा हो
वहाँ और चाहे आगे बर्त रहा हो वहां, सर्व परपदार्थोंसे निरा-
लम्ब है । उस सम्यग्दर्शनके विषयमें कहा जा रहा है कि धर्म
का मूल यह सम्यग्दर्शन है याने स्वरूप स्थितिका मूल यह
सम्यग्दर्शन है । यह शुद्धि न हो, इस तरहकी स्वच्छता न
जगी हो, विपरीत अभिप्राय न निकले हों, अपना साफ
स्वच्छ धाम न पाया हो तो यह बैठेगा कहाँ ? इस कारण
धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है और उस सम्यग्दर्शनको पानेके लिए

जो बुद्धिपूर्वक प्रयत्न है वह प्रयत्न बताया गया है जो कि सम्यक्त्वसे पहले होने वाले शुभोपयोगमें काम देता है। और जरूरत उसको भी है। सम्यक्त्वसे पहले होने वाला शुभोपयोग ही जिसके न बने उसके सम्यक्त्व कहाँसे बनेगा ? इसलिए क्या कर्तव्य है इसका एक आम उपदेश यहाँ कहा जायगा—स्वाध्याय करें, तत्त्वज्ञान करें, देवदर्शन करें, प्रभुभक्ति करें, तत्त्वमनन करें, ये सभी बातें कर्तव्योंमें बतायी जाती हैं। ये कर्तव्य हैं। इस प्रकार इन कर्तव्योंपूर्वक हुए शुभोपयोगके अनन्तर स्वके आश्रयसे होने वाला सम्यग्दर्शन, यह चारित्र वृक्षका मूल है, धर्मवृक्षका मूल है, मोक्षवृक्षका मूल है। इस प्रकार शिष्योंको जिनेन्द्र भगवानने उपदेश किया है। उस सम्यग्दर्शनकी वार्ताको हे कान वालो ! रुचिपूर्वक सुनो। कान वाले किसे कहते हैं ? जो उसको सुननेमें प्रेम रखें, और उसके प्रयोग करनेकी भावना रखें याने जो सुननेसे कोई लाभ ही न उठावें, उनके मानो कान ही नहीं हैं, यह भाव यहाँ व्यक्त किया है। तो हे बुद्धिमान पुरुषो ! सम्यग्दर्शनको, उसकी वार्ताको भावभासनासहित सुनो।

॥ समाप्त ॥

—:※:—